गोवर्धन ज्योति प्रकाशनमाला के आदि स्रोत

स्व० श्री गोवर्धन शास्त्री (१८८१-१९२७)

मान्यवर स्व० श्री गोवर्धन जी शास्त्री का जन्म सन् १८८१ में शरीफ, जिला डेरा गाजीखान (पाकिस्तान) में एक परिवार में हुआ था। श्री शास्त्री जी राजकीय कालेज लाहौर से १९०५ में स्नातक बने। उस समय के राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित होकर उन्होंने १९०५ में ही अपने आपको स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा सिंचित गुरुकुल प्रणाली हेतु समर्पित कर दिया। सन् १९०८ से १९१४ तक आपने गुरुकुल कांगड़ी (गंगा पार) में मुख्याध्यापक का पद सुशोभित किया। श्री शास्त्री का कार्यकाल अत्यन्त अनुशासनप्रिय माना जाता है। श्री शास्त्री जी ने भारतवर्ष में सर्वप्रथम विज्ञान की भौतिक एवं रसायन की दो पुस्तकों को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया। हिन्दी भाषा में विज्ञान-साहित्य-सृजन का यह सर्वप्रथम महान् कार्य था। इसी आधार पर कालान्तर में विज्ञान का हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किए जाने का कार्य प्रारम्भ हुआ।

श्री शास्त्री जी ने सन् १९१८ में एम० ए० उपाधि प्राप्त की तथा १९२२ में एम० ओ० एल० शास्त्री उपाधि से अलंकृत हुए।

श्री शास्त्री जी १९१५ में रामजस हाईस्कूल देहली में मुख्याध्यापक नियुक्त हुए। १९२० में श्री शास्त्री जी ने एंग्लो-संस्कृत हाईस्कूल, डेरा गाजीखान की स्थापना की। यहीं पर वे १९२४ तक मुख्याध्यापक रहे। इसके पश्चात् शास्त्री जी १९२५-१९२७ तक आर्यनेता श्री ठाकुरदत्त धवन द्वारा स्थापित वैदिक भ्रातृ कालेज, डेरा इस्माइल खाँ में संस्कृत प्राध्यापक पद पर रहे।

सन् १९२७ में ही श्री शास्त्री जी का डेरा इस्माइल खाँ में निधन हुआ।

श्री शास्त्री जी एक अदम्य शक्ति के पुरुष थे। आप एक आदर्श पिता, आदर्श प्राध्यापक तथा महान् शिक्षा-शास्त्री के रूप में सदैव स्मरण किए जाते रहेंगे। श्री शास्त्री जी के सुयोग्य पुत्र श्री बलभद्रकुमार हूजा, जो कि सदैव अपने पिता जी के चरण-चिन्हों पर अनुप्राणित हो, गुरुकुल कांगड़ी की एक दशक से अहर्निश तपस्यामय जीवन के साथ, शास्त्री जी के गुरुकुल के सम्बन्ध में संजोये गए स्वप्न को सजीव करने में लगे हुए हैं।

उन्हीं के आशीर्वाद से रश्मि आपकी सेवा में समर्पित है।

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, वेद विभाग

डॉ० जयदेव वेदालंकार
रीडर एवं अध्यक्ष, दर्शन विभाग

—★—

निवेदन

राष्ट्रपति से लेकर जनसाधारण तक जो भी चिन्तक शिक्षा के क्षेत्र में दिलचस्पी रखते हैं, सभी का कहना है कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन आने चाहिएँ। यही विचार राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, महात्मा हंसराज, स्वामी श्रद्धानन्द एवं टैगोर का भी था। उन्होंने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुरूप भारतीय शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन लाने का उपक्रम किया। लेकिन स्थिति अभी भी सन्तोषजनक नहीं है।

मुझे भारतीय शिक्षा-पद्धति को समझने-परखने के गत २५ वर्षों में अनेक अवसर प्राप्त हुए। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हमारी शिक्षा-पद्धति को मोड़ देने हेतु जिस तन्त्र की आवश्यकता है, हम उस तंत्र को सुशिक्षित करने के लिए कुछ भी नहीं कर रहे हैं। मेरा अभिप्राय भारतवर्ष के लाखों शिक्षकों से है। हाल ही में उ० प्र० के राज्यपाल श्री सी० पी० एन० सिंह ने उ० प्र० में नई तालीम का आन्दोलन चलाया है। कुलपतियों के हाल ही में आयोजित लखनऊ सम्मेलन में उन्होंने इसी दिशा की ओर संकेत दिया तथा कहा कि शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम आरम्भ होने चाहिएँ।

इस कार्यक्रम में गुरुकुल कांगड़ी जैसी संस्थाएँ महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। अतः हम गुरुकुल कांगड़ी में वैदिक शिक्षा-प्रणाली के आधार पर ऐसे पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में लगे हैं जिसे हम शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ताओं के समक्ष उपस्थित कर सकें।

इसी प्रसंग में मुझे स्वामी दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे, तीसरे समुल्लास को अनेक बार अध्ययन करने का अवसर मिला। लोग सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ने से यह सोचकर हिचकिचाते हैं कि यह आर्य समाज का धार्मिक ग्रन्थ है। अतः जो आर्यसमाजी नहीं, उससे उन्हें क्या प्रयोजन? वे सर्वथा भूल पर हैं। सत्यार्थ प्रकाश के इन समुल्लासों में ऋषि दयानन्द ने शिक्षा सम्बन्धी जो विचार प्रस्तुत किए हैं वे शिक्षाशास्त्रियों के सामने वैज्ञानिक और तर्कसंगत चिन्तन उपस्थित करते हैं।

इन समुल्लासों में स्वामी दयानन्द ने मनुस्मृति एवं अन्य आर्य-ग्रन्थों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। ज्यादातर शिक्षकवर्ग संस्कृति से अनभिज्ञ हैं। इसलिए इस दृष्टि से कि स्वामी जी के विचार उनके हृदयंगम हों, मैंने इस समुल्लासों के सरलीकरण का प्रयत्न किया और आर्य समाज गुरुकुल कांगड़ी को प्रेषित किया है। इन्हें शिक्षकवर्ग में प्रचार हेतु प्रकाशित करें। आर्थिक सहायता के रूप में संघड़ विद्या ट्रस्ट जयपुर ने १०० रुपये का अनुदान देना स्वीकृत किया है :

उक्त समुल्लासों के अध्ययन से निम्न बातें उभर कर आती हैं।

१. मातृशिक्षा अर्थात् महिला शिक्षा नितांत आवश्यक है, जिससे कि बच्चों में उत्तम संस्कार पड़ें।

२. शिक्षा गर्भ से ही आरम्भ हो जाती है तथा आयु-पर्यन्त चलती है।

३. ब्रह्मचर्य का पालन व्यक्ति को शक्तिशाली बनाता है और उसका सन्तान पर भी प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार की शिक्षा उन्हें उपदेश, उदाहरण तथा सद्व्यवहार द्वारा दी जानी चाहिए। भ्रांति-जाल में गिराये जाने वाले व्यवहार से उन्हें सचेत करना चाहिये।

४. आवश्यकतानुसार संतानों का ताड़न भी करना चाहिएँ। क्रोधादि दोष तथा कटुवचन को छोड़कर शान्ति एवं मधुर वचन बोलने चाहिएँ।

५. बड़ो को मान देना चाहिए।

६. स्वामी जी सह-शिक्षा के विरोधी थे। लेकिन वे स्त्री-शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। उनका विचार था कि प्रत्येक को गुरुकुल जाने का अधिकार है, जो अपनी सतान को गुरुकुल में न भेजें, उन्हें राजदण्ड दिया जाए।

७. सबको समतुल्य वस्त्र, आसन, खानपान दिए जाने चाहिएँ, भले ही कोई राजकुमार हो या दरिद्र।

८. सबको तपस्वी होना चाहिए।

९. स्वामी जी ने देवयज्ञ, अग्निहोत्र और विद्वानों के संग पर भी बल दिया।

१०. स्वामी जी ने प्राणायाम पर भी बहुत जोर दिया है, उनके विचार में प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष क्षीण होते हैं।

११. इसी प्रकार स्वामी जी बाल-विवाह के विरोधी थे। उन्होंने कहा कि ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी सात्विक जीवन व्यतीत करने के पश्चात् परिपक्व अवस्था में पहुंचें, तभी विवाह करें।

१२. स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम में केवल वेदादि का पढ़ना ही पर्याप्त नहीं था। वह वेद, वेदांग एवं उपवेद जिनमें आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, अर्थवेद जिसे शिल्प-विद्या कहते हैं, सभी में प्रशिक्षण देने के पक्षधर थे। स्वामी जी के आदर्श के अनुसार दो-तीन विषयों का अध्ययन करके स्नातक की उपाधि हासिल नहीं हो सकती थी। स्नातक बनने हेतु विभिन्न उपवेदों एवं अन्य विषयों में भी प्रवेश आवश्यक था।

१३. इस तरह यह आवश्यक था कि गुरु विद्यार्थियों को अपने गर्भस्थ रखे तथा उनके सम्पूर्ण विकास में सहायता करने हेतु सर्वथा उद्यत रहे।

१४. स्वामी जी ने लिखा है कि आचार्य अन्तेवासी शिष्य-शिष्याओं को प्रमादरहित धर्माचरण का उपदेश दें।

उपर्युक्त विचारों के प्रसार हेतु लघु-पुस्तिका की रचना, स्वामी जी के ही शब्दों में की गई है। आशा है कि यह शिक्षकवर्ग तथा माता-पिता के लिए विचारोत्तेजक सामग्री सिद्ध होगी।

पुण्यभूमि, ग्राम कांगड़ी,
जिला—बिजनौर।
श्रद्धानन्द बलिदान दिवस—
दिनांक : २५-३-८५

बलभद्रकुमार हूजा
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

भूमिका

स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के रूप में संसार के पुस्तकालय को एक ऐसी भेंट दी है जो मानव-मूल्यों पर आधारित समाज का सही सुन्दर्भ में प्रथम संविधान के रूप में प्रस्तुतिकरण करती है। सत्यार्थ प्रकाश से उद्घाटित विचार-माला ने एक यथार्थ जीवन को जीवन-मूल्यों के साथ चित्रित किया है जिसमें मानव को संस्कारित किये जाने से लेकर उसके सभी कर्तव्यों का पाठ पढ़ाया गया है।

पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से परिवेष्टित भारतीय दृष्टि को सत्यार्थ प्रकाश ने ऐसी कसौटी प्रदान की जिससे सत्य एवं असत्य का आँकलन स्वतः ही होने लगा। भारतीय जनता के हतग्रस्त गौरव को सत्यार्थ प्रकाश में अभिव्यक्त जीवनशैली ने नवशक्ति एवं स्फूरणता प्रदान की। भारतीयों के लुप्त गौरव को सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाश ने पुनः उद्भुत कर दिया।

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में समग्र जीवन-शैली को अत्यन्त सरल, सुबोध एवं व्यवहारिक रूप से लोक-मानस के सामने अभिव्यक्त किया। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम दश समुल्लासों में जीवन की रचनात्मकता के सम्बन्ध में, उनको संस्कारित किए जाने के परिप्रेक्ष्य में तथा आध्यात्मिक सत्यों पर जीवन-शक्ति को आरूढ़ित करने के प्रसंग में ऋषि दयानन्द ने मानव को सही मायने में इन्सान बनाने का कार्यक्रम व्यक्त किया।

मनुष्य को सही अर्थों में सच्चा इन्सान बनाने का क्रम उसकी प्रथम निर्मात्री माता के द्वारा ही प्रारम्भ हो जाता है। जीवन के इस प्रथम सत्य को ऋषि दयानन्द ने सूक्ष्मतापूर्वक अंतर्निहित किया और सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में मानव को शिक्षित किए जाने के कार्यक्रम का प्रारम्भ "मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद" से किया। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आर्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान होता है। संस्कारों की निर्माणशाला में सर्वप्रथम जिम्मेदारी माता की है। प्रस्तुत पुस्तक में ऋषि दयानन्द के संस्कारित किये जाने के कार्यक्रम वाले भागों का बुद्धिगम्य विवेचन किया गया है। एक शिक्षा-विद् होने के नाते तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति सम्बन्धी विचारों में चिरन्तन चिंतन

किये जाने से इस पुस्तक के प्रस्तुतकर्त्ता का यह दृढ़ मत है कि ऋषि दयानन्द के द्वारा प्रदत्त शिक्षा-नीति से ही व्यक्ति का आत्मिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय उत्थान संभव है।

इसी प्रकार तृतीय समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने जो ब्रह्मचर्य, पठन-पाठन व्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने-पढ़ाने की रीति का जो विवरण प्रस्तुत किया है वह सच्चे अर्थों में एक ऐसे समाज का निर्माण करता है जो मानव को लोक-कल्याण के मार्ग के साथ-साथ भौतिक उन्नति भी प्रदान करता है। जीवन के आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों पक्षों का सार्थक प्रयोग ऋषि दयानन्द ने अपने विचारों में किया है।

ऋषि दयानन्दकृत सत्यार्थ प्रकाश के इन समुल्लासों आध्यात्मिक धरातल पर मानव का निर्माण क्रियात्मक तथा जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। सत्यार्थ प्रकाश के इन समुल्लासों में मानव को यह अमृतमय संदेश दिया गया है, "योगी बनो, साथ में कर्मयोगी, आत्मज्ञानी भी बनो, साथ में मानव भी, परमात्मा के सेवक बनो परन्तु प्रकृति के स्वामी भी बनो"। इन समुल्लासों में व्यक्त प्रत्येक वाक्य निराश जीवन के लिये तेजोमय दीप है, कुंठित मनःस्थिति वालों के लिये पीयूष-धारा है, संतप्त हृदय के लिये शीतल स्पन्दन है।

सत्यार्थ प्रकाश के उक्त समुल्लासों पर आधारित इस कृति का प्रकाशन संघड विद्या ट्रस्ट, जयपुर के सौजन्य से गुरुकुल के भूतपूर्व यशस्वी मुख्य अध्यापक आचार्य गोवर्धनजी शास्त्री की स्मृति में गोवर्धन-ज्योति के रूप में किया गया है।

———

ओ३म्

"मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद"

जब तीन उत्तम शिक्षक, अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य, वह संतान बड़ी भाग्यवान् जिसके माता-पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है, उतना अन्य कोई नहीं करता। इसलिये धन्य है वह माता कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो, तब तक सुशीलता का उपदेश करे।

माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक-द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध-रुक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करे, जैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करे कि जिससे रजस् वीर्य भी दोनों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हो। गर्भाधान के पश्चात् स्त्री को बहुत सावधानी से भोजन-छादन करना चाहिये। पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुष का संग न करे। बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्यों ही का सेवन स्त्री करती रहे, जब तक सन्तान का जन्म न हो। जब जन्म हो तब अच्छे सुगन्धियुक्त जल से बालक को स्नान, नाड़ीछेदन करके सुगन्धियुक्त घृतादि के होम और स्त्री के भी स्नान-भोजन का यथायोग्य प्रबन्ध करे कि जिससे बालक और स्त्री का शरीर क्रमशः आरोग्य और पुष्ट होता जाय। ऐसा पदार्थ उसकी माता वा धायी खावे कि जिससे दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों। प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे पश्चात् धायी पिलाया करे। परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का खान-पान पिता करावे। जो कोई दरिद्र हो, धायी को न रख सके तो गाय बकरी के दूध में उत्तम औषधि जो कि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करनेहारी हो उनको शुद्ध जल में भिजो, औटा छान के दूध के समान जल मिला के बालक को पिलावे। जन्म के पश्चात् बालक और उसकी माता को दूसरे स्थान में जहां का वायु शुद्ध हो वहां रक्खो सुगन्ध तथा दर्शनीय पदार्थ भी रक्खें। और उस देश में भ्रमण कराना उचित है कि जहां का वायु शुद्ध हो। और

जहां धायी, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके वहां जैसा उचित समझें वैसा करें। क्योंकि प्रसूति स्त्री के शरीर के अंश से बालक का शरीर होता है इसी से स्त्री प्रसवसमय निर्बल हो जाती है। इसीलिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे। दूध रोकने से स्तन के छिद्र पर उस औषधि का लेप करे जिससे दूध प्रस्रवित न हो। ऐसे करने से दूसरे महीने में पुनरपि युवती हो जाती है। तब तक पुरुष ब्रह्मचर्य से वीर्य का निग्रह रक्खे। इस प्रकार जो स्त्री वा पुरुष करेंगे उनके उत्तम सन्तान, स्त्री योनिसंकोचन, शोधन और पुरुष वीर्य का स्तम्भन करे। पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे।

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान संभव हो और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावे। जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े-छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान आदि से भाषण, उनसे बर्तना और उसके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करे जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न हो के सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचित करे वैसा प्रयत्न करते रहे। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करे। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है इससे उसका स्पर्श न करें। सदा सत्यभाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें। जब पांच वर्ष के लड़का लड़की हो तब देवनागरी अक्षरों का ज्ञान करावें, अन्यदेशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता-पिता, आचार्य, विद्वान, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे-कैसे बर्तना इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थसहित कण्ठस्थ करावे, जिससे सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवे।

और जो जो विद्या धर्मविरुद्ध भ्रांतिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश कर दे, जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो। अज्ञानी लोग वैद्यकशास्त्र वा पदार्थविद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादादि मानस् रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते हैं। उनका औषध सेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भंगी, चमार, शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल, कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा-धागा आदि मिथ्या मन्त्र-यन्त्र बांधते-बंधवाते फिरते हैं। जब आंख के अंधे गांठ के पूरे उन दुर्बुद्धि पापी स्वार्थियों

के पास जाकर पूछते हैं कि महाराज ! इस लड़का, लड़की, स्त्री और पुरुष को न जाने क्या हो गया ? तब वे बोलते हैं कि 'इसके शरीर में बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आ गई है जब तक तुम इसका उपाय न करोगे तब तक ये न छूटेंगे और प्राण भी ले लेंगे । जो तुम मलीदा वा इतनी भेंट दो वो हम मन्त्र जप पुरश्चरण से झाड़ के इनको निकाल दें ।' तब वे अंधे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि 'महाराज चाहे हमारा सर्वस्व जाओ परन्तु इसको अच्छा कर दीजिये' । तब तो उनकी बन पड़ती है । वे धूर्त कहते हैं अच्छा लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवता को भेंट और ग्रहदान कराओ । झांझ, मृदंग, ढोल, थाली लेके उनके सामने बजाते गाते और उनमें से एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच कूद के कहता 'मैं इसका प्राण ही ले लूंगा ।' तब वे अंधे उस भंगी चमार आदि नीच के पगों में पड़ के कहते हैं 'आप चाहे सो लीजिये इसको बचाइये।' तब वह धूर्त बोलता है 'मैं हनुमान हूं, लाओ पक्की मिठाई, तेल, सिन्दूर, सवा मन का रोट और लाल लंगोट ।' मैं देवी वा भैरव हूं, लाओ पांच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पांच बकरे, मिठाई व वस्त्र' । जब ये कहते हैं कि 'जो चाहो सो लो' तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है । परन्तु जो कोई बुद्धिमान उनकी भेंट पांच जूता, डंडा या चपेटा, लाते मारे तो उसके हनुमान, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं, क्योंकि वह उनका केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है ।

अब रह गई शीतला और मन्त्र-यन्त्र आदि । ये भी ऐसे ही ढोंग मचाते हैं । कोई कहता है कि जो हम मन्त्र पढ़के डोरा वा यन्त्र बना देवें तो हमारे देवता और पीर उस मन्त्र यन्त्र के प्रताप से उसको कोई विघ्न नहीं होने देते । उनको वही उत्तर देना चाहिए कि क्या तुम मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से भी बचा सकोगे । तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर जाते हैं और तुम्हारे घर में भी मर जाते हैं और क्या तुम मरण से बच सकोगे ? तब वे कुछ भी नहीं कह सकते और वे धूर्त जान लेते हैं कि यहां हमारी दाल नहीं गलेगी । इससे इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्ता, निष्कपटता से सबको विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान लोगों का प्रत्युपकार करना जैसा वे जगत का उपकार करते हैं, इस काम को कभी न छोड़ना चाहिए । और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं उनको भी महा-पामर समझना चाहिये । इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था ही में सन्तानों के हृदय में डाल दे कि जिससे स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़के दुःख न पावे ।

वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दु:ख प्राप्ति भी जना देनी चाहिये। जैसे, देखो जिसके शरीर में वीर्य सुरक्षित रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्तसेवन, संभाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसकी शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिनको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल निस्तेज, निर्बुद्धिउत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुन: इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक हम लोग गृहकर्मों के करने वाले जीते हैं तभी तक तुमको विद्याग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिये। इसी प्रकार की अन्य-अन्य शिक्षा भी माता और पिता करें। इसीलिये 'मातृमान् पितृमान्' शब्द का ग्रहण उक्त वचन में किया है, अर्थात् जन्म से पांचवें वर्ष तक बालकों को माता, छठे वर्ष से आठवें वर्ष तक पिता शिक्षा करे और नवें वर्ष के आरम्भ में द्विज। अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्यकुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्या दान करने वाली हो वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें।

उन्हीं के सन्तान विद्वान, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते किन्तु ताड़ना ही करते हैं। जो माता, पिता और आचार्य सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं वे जानो अपने सन्तानों और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो अपने सन्तानों और शिष्यों का लाड़न करते हैं वे अपनी सन्तानों और शिष्यों को विष पिला के नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोष-युक्त तथा ताड़न से गुणयुक्त होते हैं। और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़ना से प्रसन्न और लाड़न से अप्रसन्न सदा रहा करें। परन्तु माता, पिता तथा अध्यापक को ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से कृपादृष्टि रक्खें। जैसी अन्य शिक्षा की, वैसी चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्याभाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों के छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करे। क्योंकि जिस पुरुष ने जिसके सामने एक बार चोरी जारी मिथ्याभाषणादि कर्म किया उसकी प्रतिष्ठा उसके सामने मृत्युपर्यन्त नहीं होती। जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करने वाले की होती है वैसी अन्य किसी की नहीं।

इससे जिसके साथ गैसी प्रतिज्ञा करो उसके साथ वैसी ही करनी चाहिये अर्थात् जैसे किसी ने किसी से कहा कि मैं तुमको या तुम मुझसे अमुक समय में मिलूंगा वा मिलना अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुमको दूंगा' इसको वैसी ही पूरी करे नही तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा। इसलिये सदा सत्यभाषण और सत्य प्रतिज्ञयुक्त सबको होना चाहिये। किसी को अभिमान न करना चाहिये। छल, कपट वा कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये। क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवास न करे। जितना बोलना चाहिये उससे न्यून वा अधिक न बोलें। बड़ों को मान दे, उनके सामने उठकर जाके उच्चासन पर बैठावे, प्रथम 'नमस्ते' करे। उसके सामने उत्तमासन पर न बठे। सभा में वैसे स्थान पर बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे। विरोध किसी से न करे। सम्पन्न होकर गुणों का ग्रहण और त्याग रक्खें। सज्जनों का संग और दुष्टों का त्याग, अपने माता, पिता और आचार्य की तन, मन और धनादि उत्तम-उत्तम पदार्थों से प्रीतिपूर्वक सेवा करे।

माता-पिता, आचार्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करे और यह भी कहे कि जो-जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उनका ग्रहण करो और जो जो दुष्ट कर्म हो उसका त्याग कर दिया करो। जो जो सत्य जाने उन उनका प्रचार करे। किसी पाखण्डी, दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करे और जिस-जिस उत्तम कर्म के लिये माता, पिता और आचार्य आज्ञा देवे उस-उस का यथेष्ट पालन करे।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥

वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई। वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसों के बीच में बगुला। यही माता, पिता का कर्त्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन, विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना।

★

सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चाँदी, मोती, मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण करने से मनुष्य की आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकती। क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के योग से बालकादिकों का मृत्यु दुष्टों के हाथ से होता है।

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दर, शील स्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियमपालनयुक्त और जो अभिमान, अपवित्रता से रहित, अन्य की मलीनता का नाशक, सत्योपदेशक, विद्यादान से संसारी-जनों के दु:खों के दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहते हैं, वे नर और नारी धन्य हैं। इसलिये आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देवें। जो अध्यापक पुरुष व स्त्री दुष्टाचारी हो उनसे शिक्षा न दिलावे। किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं। द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्यकुल अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज दे।

विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिये और वे लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से होनी चाहिये। जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य, अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे। अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहे तब तक स्त्री पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्त सेवन, भाषण, विषयकथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान और संग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहे और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें। जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील स्वभाव, शरीर और आत्मा से बलयुक्त होके

आनन्द को नित्य बढ़ा सके। पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् बीस कोस दूर ग्राम वा नगर रहे।

सबको तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्र के सन्तान हो। सबको तपस्वी होना चाहिये। राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवे अथवा आठवे वर्ष के आगे कोई अपने लड़के और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवे, जो न भेजे वह दण्डनीय हो। प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्यकुल में हो।

ओ३म् भूर्भुव स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

उस परमात्मा का जो शुद्ध, चेतन स्वरूप है उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिए कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामी स्वरूप हमको दुष्टाचार, अधर्मयुक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार सत्य मार्ग में चलावे।

इस प्रकार गायत्रीमन्त्र का उपदेश करके सन्ध्योपासन की जो स्नान, आचमन, प्राणायाम आदि क्रिया हैं सिखलावें। प्रथम स्नान इसलिये है कि जिससे शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं। दूसरा प्राणायाम, जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है।

जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं। प्राणायाम की विधि—

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवें। जब बाहर निकालना चाहें तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रक्खें तब तक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो तब धीरे-धीरे भीतर वायु को लेके फिर भी वैसे ही करता जाय, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो। और मन में 'ओ३म्' इसका जप करता जाय। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता

होती है। एक 'बाह्यविषय' अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा 'आभ्यन्तर' अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय उतना रोक के, तीसरा 'स्तम्भवृत्ति' अर्थात् एक ही बार जहाँ का तहाँ को यथाशक्ति रोक देना। चौथा 'बाह्याभ्यन्तराक्षेपी' अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उससे विरुद्ध न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर ले और जब भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाय। ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियें भी स्वाधीन होते हैं, बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीर में वीर्य बुद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे। भोजन, छादन, बैठने, उठने, बोलने, चालने, बड़े-छोटे से यथायोग्य व्यवहार करने का उपदेश करें।

जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा, सावधान होके, जल के समीप नित्यकर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मंत्र का उच्चारण अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे। परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है।

दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र और विद्वानों का संग सेवादिक से होता है। सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल में करे। दो ही रात दिन की सन्धिवेला हैं अन्य नहीं। न्यून से न्यून एक घंटा ध्यान अवश्य करे। जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करें। तथा सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है, जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये। इसलिए आर्यवरशिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे लोग बहुतसा होम करते और कराते थे। जब तक होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्य्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाय।

इस शरीर की चार अवस्था हैं एक (वृद्धि) जो सोलहवे वर्ष से ले के पच्चीसवे वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है। दूसरी (यौवन) जो पच्चीसवें

वर्ष के अन्त और छब्बीसवे वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ होता है। तीसरा (सम्पूर्णता) पच्चीसवे वर्ष से ले के चालीसवे वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है। चौथी (किञ्चित्परिहाणि) जब सब सांगोपाय शरीरस्थ सकल धातु पुष्ट होके पूर्णता को प्राप्त होते हैं। तदन्तर जो धातु बढ़ता है वह शरीर में नहीं रहता, किन्तु स्वप्न प्रस्वेदादि द्वारा बाहर निकल जाता है, वही चालीसवाँ वर्ष उत्तम समय विवाह का है अर्थात् उत्तमोत्तम तो अड़तालीसवे वर्ष में विवाह करना। जो पच्चीस वर्ष पर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य करे तो सोलह वर्ष पर्यन्त कन्या, जो पुरुष तीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री को सतरह वर्ष, जो पुरुष छत्तीस वर्ष तक रहे तो स्त्री अठारह वर्ष, जो पुरुष चालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री बीस वर्ष, जो पुरुष अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन रक्खे। अर्थात् अड़तालीसवे वर्ष से आगे पुरुष और चौबीसवें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य न रखना चाहिये, परन्तु यह नियम विवाह करने वाले पुरुष और स्त्रियों का है। और जो विवाह करना ही न चाहे वे मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों तो भले ही रहे। परन्तु यह काम पूर्ण विद्या वाले जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है। यह बड़ा कठिन काम है कि जो काम के वेग को थाम के इन्द्रियों को अपने वश में रखना।

आचरण से पढ़े और पढ़ावे। सत्याचार से सत्य विद्याओं को पढ़े वा पढ़ावे तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुये वेदादि शास्त्रों को पढ़े और पढ़ावे। बाह्य इन्द्रियों को बुरे आचरणों से रोक के पढ़े और पढ़ाते जाये। मन की बृत्ति को सब प्रकार के दोषों से हटा के पढ़ते पढ़ाते जाये और आहवनीयाद अग्नि और विद्युत आदि को जानके पढ़ते जाये और अग्निहोत्र करते हुये पठन और पाठन करे-करावे। अतिथियों की सेवा करते हुये पढ़े और पढ़ावे। मनुष्य सम्बन्धी व्यवहारों को यथायोग्य करते हुए पढ़ते पढ़ाते रहे। संतान और राज्य का पालन करते हुये पढ़ाते जाये। वीर्य की रक्षा और वृद्धि करते हुए पढ़ते पढ़ाते जाये। अपने संतान और शिष्य का पालन करते हुये पढ़ते पढ़ाते जाये।

अहिंसा (वैरत्याग) सत्य (सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना) अस्तेय (मन वचन कर्म से चोरीत्याग) ब्रह्मचर्य (उपस्थेन्द्रिय का संयम) अपरिग्रह (अत्यन्त लोलुपता स्वत्वाभिमान रहित होना) इन पाँच यमों का सेवन सदा करे। शौच (स्नानादि से पवित्रता) सन्तोष (सम्यक प्रसन्न होकर निरन्तर रहना सन्तोष नहीं किन्तु पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना, हानि लाभ में हर्ष वा शोक न करना) तप (कष्ट सेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान) स्वाध्याय (पढ़ना-पढ़ाना)

ईश्वर प्राणिधान (ईश्वर की भक्ति विशेष से आत्मा को अर्पित रखना) ये पाँच नियम कहाते हैं । यमों के बिना केवल इन नियमों का सेवन न करे किन्तु इन दोनों का सेवन किया करे । जैसे विद्वान सारथि घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन और आत्मा को खोटे कामों में खेंचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करे ।

जीवात्मा इन्द्रियों के वश होके निश्चित बड़े२ दोषों को प्राप्त होता है, और जब इन्द्रियों को अपने वश में करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है। जो दुष्टाचारी अजितेन्द्रिय पुरुष है उसके वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप तथा अन्य अच्छे काम कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते । जो सदा नम्र, सुशील, विद्वान और वृद्धों की सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार सदा बढ़ते हैं, और जो ऐसा नहीं करते उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते ।

विद्वान और विद्यार्थियों को योग्य है कि वैर-बुद्धि छोड़ के सब मनुष्यों को कल्याण के मार्ग का उपदेश करें और उपदेष्टा सदा मधुर सुशीलतायुक्त वाणी बोले । जो धर्म की उन्नति चाहे वह सदा सत्य में चले और सत्य का ही उपदेश करे ।

ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का संग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा, अंगों का मर्दन, बिना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श, आंखों में अंजन, जूते और छत्र का धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, नाच-गान और बाजा बजाना, द्यूत, जिस किसी की कथा, निन्दा, मिथ्या-भाषण, स्त्रियों का दर्शन, आश्रय दूसरे की हानि आदि कुकर्मों को सदा छोड़ देवें। सर्वत्र एकाकी सोवे वीर्य स्खलित कभी न करे, जो कामना से वीर्य स्खलित करदे तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्यव्रत का नाश कर दिया ।

आचार्य अन्तेवासी अर्थात् अपने शिष्य और शिष्याओं को इस प्रकार उपदेश करे कि तू सदा सत्य बोल, धर्माचरण कर, प्रमादरहित होके पढ़-पढ़ा, पूर्ण ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण और आचार्य के लिये प्रिय धन देकर विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर, प्रमाद से सत्य को कभी मत छोड़, प्रमाद से धर्म का त्याग मत कर, प्रमाद से अयोग्य और चतुराई को मत छोड़, प्रमाद से उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि को मत छोड़, प्रमाद से पढ़ने और पढ़ाने को कभी मत छोड़ । देव, विद्वान

और माता-पितादि की सेवा में प्रमाद मत कर। जैसे विद्वान का सत्कार करे उसी प्रकार माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा किया कर। जो अनिन्दत धर्मयुक्त कर्म हैं, उन सत्यभाषणादि को किया कर, उनसे भिन्न मिथ्याभाषादि कभी मत कर, जो हमारे सुचरित्र अर्थात् धर्मयुक्त कर्म ही उनका ग्रहण हों उनको कभी मत कर। जो कोई हमारे मध्य में उत्तम विद्वान धर्मात्मा ब्राह्मण हैं, उन्ही के समीप बैठ और उन्हीं का विश्वास किया कर। श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिये। जब कभी तुझको कर्म वा शील तथा उपासना ज्ञान में किसी प्रकार का संशय उत्पन्न हो तो जो वे विचारशील पक्षपातरहित योगी अयोगी आर्द्रचित धर्म की कामना करने वाले धर्मात्मा जन हों जैसे वे धर्म मार्ग में बरत वैसे तू भी उसमें बर्ता कर। यही आदेश आज्ञा, यही उपदेश, यही वेद की उपनिषत् और यही शिक्षा है। इसी प्रकार बर्तना और अपना चालचलन सुधारना चाहिये।

कहने, सुनने, सुनाने, पढ़ने, पढ़ाने का फल यही है कि जो वेद और वेदानुकूल स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का आचरण करना, इसलिये धर्माचार में सदा युक्त रहे। क्योंकि जो धर्माचरण से रहित है वह वेदप्रतिपादित धर्मजन्य सुखरूप फल को प्राप्त नहीं हो सकता, और जो विद्या पढ़ के धर्माचरण करता है वह सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है।

जो पुरुष अर्थ (सुवर्णादिरत्न) और काम (स्त्रीसेवनादि) में नहीं फंसते हैं उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है, जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करे, वेद द्वारा धर्म का निश्चय करे, क्योंकि धर्माधर्म का निश्चय बिना वेद के ठीक नहीं होता।

इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करे और विशेषकर राजा इतर क्षत्रीय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावे। क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें, और क्षत्रियादि न करे तो विद्या धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने-पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं। जीविका के अधीन और क्षत्रियादि के आज्ञादाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्ड ही में फंस जाते हैं, और जब क्षत्रियादि विद्वान होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में बोलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड का झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते, और जब क्षत्रियादि अविद्वान होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते-कराते हैं। इसलिए ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहे तो

क्षत्रियादि को वेदादि सत्यशास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें। क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, कर्म, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करने हारे हैं, वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं करते, इसलिए वे विद्याव्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते । और जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पाखण्डरूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहार नहीं चला सकता, इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में चलाने वाले ब्राह्मण और संन्यासी तथा ब्राह्मण और संन्यासी को सुनियम में चलाने वाले क्षत्रियादि होते हैं । इसलिए सब वर्णों के स्त्री-पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिए ।

अब जो-जो पढ़ना-पढ़ाना हो वह अच्छे प्रकार परीक्षा करने योग्य है। परीक्षा पांच प्रकार की होती है। एक जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो, वह-वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है। दूसरी जो-जो सृष्टिक्रम से अनुकूल, वह-वह सत्य और जो-जो सृष्टिक्रम से विरुद्ध है, वह सब असत्य है। जैसे कोई कहे कि बिना माता-पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ, ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है। तीसरी-'आप्राप्त' अर्थात् जो धार्मिक, विद्वान सत्यवादी, निष्कपटियों का संग उपदेश के अनुकूल है वह-वह ग्राह्य और जो-जो विरुद्ध वह-वह अग्राह्य है । चौथी अपने आत्मा की पवित्रता विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूंगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा। और पांचवी आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव इत्यादि शास्त्रों के प्रमाणादि से परीक्षा करके पढ़े और पढ़ावे। अन्यथा विद्यार्थियों को सत्य बोध कभी नहीं हो सकता । जिस-जिस ग्रन्थ को पढ़ावे उस-उस की पूर्वोक्त प्रकार से परीक्षा करके जो सत्य ठहरे वह-वह ग्रन्थ पढ़ावे। जो-जो इन परीक्षाओं से विरुद्ध हो उन-उन ग्रन्थों को न पढ़े न पढ़ावे, जिस व्यापक अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर में सब विद्वान और पृथ्वी सूर्य आदि सब लोक स्थित हैं कि जिसमें सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है, उस ब्रह्म को जो नहीं जानता, वह ऋग्वेदादि से क्या कुछ सुख को प्राप्त हो सकता है ? नहीं-नहीं, किन्तु जो वेदों को पढ़के धर्मात्मा योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं वे सब परमेश्वर में स्थित होके मुक्तिरूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं । इसलिए जो कुछ पढ़ना वा पढ़ाना हो वह अर्थ ज्ञान सहित चाहिए। इस प्रकार सब वेदों को पढ़ के अर्थात् आयुर्वेद जो चरक,सुश्रुत आदि ऋषिमुनिप्रणीत वैद्यक शास्त्र हैं उसको अर्थ, क्रिया-

शास्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तु के गुण ज्ञानपूर्वक चार वर्ष के भीतर पढ़ें पढ़ावें। तदन्तर धनुर्वेद अर्थात् जो राजसम्बन्धी काम करना है, इसके दो भेद एक निज राजपुरुषसम्बन्धी और दूसरा प्रजासम्बन्धी होता है। राजकार्य में सभा, सभा के अध्यक्ष, शस्त्रास्त्र, विद्या नाना प्रकार के व्यूहों का अभ्यास अर्थात् जिसको आजकल 'कवायद' कहते हैं जो कि शत्रुओं से लड़ाई के समय में क्रिया करनी होती है, उसको यथावत् सीखें और जो-जो प्रजा के पालन और वृद्धि करने का प्रकार हैं, उनको सीख के न्यायपूर्वक सब प्रजा को प्रसन्न रखें, दुष्टों को यथायोग्य दण्ड, श्रेष्ठों के पालन का प्रकार सब प्रकार सीख लें। इस राजविद्या को दो वर्ष में सीखकर गान्धर्ववेद की जिसको गान विद्या कहते हैं, उसमें स्वर, राग, रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदि को यथावत् सीखें। परन्तु मुख्य करके सामवेद का ज्ञान वादित्र-वादनपूर्वक सीखें। और नारदसंहिता आदि जो-जो आर्ष ग्रन्थ हैं उनको पढ़ें। परन्तु भड़वे वेश्याओं के विषयासक्तिकारक और वैरागियों के गर्दभशब्दवत् व्यर्थ अलाप कभी न करें। अर्थवेद कि जिसको शिल्पविद्या कहते हैं उसको पदार्थ, गुणविज्ञान, क्रियाकौशल, नानाविध पदार्थों का निर्माण, पृथ्वी से लेके आकाश पर्यन्त की विद्या को यथावत् जो ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला है उस विद्या को सीख के दो वर्ष में ज्योतिषशास्त्र सूर्यसिद्धांतादि जिसमें बीजगणित, अंक, भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या है, इसको यथावत् सीखें। तत्पश्चात् सब नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहुर्त आदि के फल के विधायक ग्रन्थ हैं उनको झूठ समझ के कभी न पढ़ें और पढ़ावें। ऐसा प्रयत्न पढ़ने और पढ़ाने वाले करे कि जिससे बीस या इक्कीस वर्ष के भीतर समग्र विद्या उत्तम शिक्षा प्राप्त होके मनुष्य लोग कृतकृत्य होकर सदा आनन्द में रहें। जितनी विद्या इस रीति से बीस या इक्कीस वर्षों में हो सकती है, उतनी अन्य प्रकार से शतवर्ष में भी नहीं हो सकती।

जो विद्या पढ़ने पढ़ाने के विघ्न हैं उनको छोड़ देवें, जैसा कुसंग अर्थात् दुष्ट विषयोजनों का संग, दुष्टव्यसन जैसा मद्यादि सेवन और वेश्यागमनादि, बाल्यावस्था में विवाह अर्थात् पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुरुष और सोलहवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना, पूर्ण ब्रह्मचर्य न होना, अतिभोजन, अतिजागरण करना पढ़ने पढ़ाने, परीक्षा लेने या देने में आलस्य या कपट करना, सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना। ब्रह्मचर्य से बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धन की वृद्धि न मानना, ईश्वर का ध्यान छोड़ अन्य पाषाणादि जड़ मूर्ति के दर्शन पूजन में व्यर्थ काल खोना। माता, पिता, अतिथि और आचार्य, विद्वान इनको सत्यमूर्ति मानकर सेवा सत्संग न करना। वर्णाश्रम के धर्म को छोड़ ऊर्ध्व पुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कण्ठी,

मालाधारण, एकादशी, त्रयोदशी आदि व्रत करना, काश्यादि तीर्थ और रामकृष्ण नारायण, शिव, भगवती, गणेश आदि के नाम स्मरण भागवतादि की कथादि से मुक्ति को मानना, लोभ से धनादि में प्रवृत्त होकर विद्या में प्रीति न रखना, इधर-उधर व्यर्थ घूमते रहना इत्यादि मिथ्या व्यवहारों में फंस के ब्रह्मचर्य और विद्या के लाभ से रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं।

आजकल के संप्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या सत्संग से हटा और अपने जाल में फंसा के उनका तन, मन, धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़कर विद्वान हो जायेंगे तो हमारे पाखण्ड-जाल से छूट और हमारे छल को जानकर हमारा अपमान करेंगे। इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके अपने लड़कों और लड़कियों को विद्वान करने के लिए तन, मन, धन से प्रयत्न किया करे। सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है।

परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और भृत्य वा स्त्रियादि और अतिशूद्रादि के लिए भी जो वेदों का प्रकाश किया है, अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन-सुनाकर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूटकर आनन्द को प्राप्त हो।

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवती, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे कन्या ब्रह्म-चर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान युवावस्थायुक्त पुरुष को प्राप्त होवे इसलिए स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या ग्रहण अवश्य करना चाहिए। भला जो पुरुष विद्वान और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान हो तो नित्यप्रति देवासुर संग्राम घर में मचा रहे फिर सुख कहां? इसलिए जो स्त्री न पढ़े तो कन्याओं की पाठशाला में अध्यापिका क्यों कर हो सके तथा राजकार्य, न्यायाधीश-त्वादि गृहाश्रम का कार्य जो पति को स्त्री और स्त्री को पति प्रसन्न रखना, घर के सब काम स्त्री के अधीन रहना इत्यादि काम बिना विद्या के अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते।

आर्यावर्त राजपुरुषों की स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी अच्छी प्रकार जानती थीं। क्योंकि जो न जानती होतीं तो केकयी आदि दशरथ आदि के साथ

युद्ध में क्योंकर जा सकती और युद्ध कर सकती । इसलिए ब्राह्मणों और क्षत्रियों को सब विद्या, वैश्यों को व्यवहार विद्या और शूद्रों को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिए । जैसे पुरुषों को व्यापार, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिए, वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य सीखनी चाहिए । क्योंकि इनके सीखे बिना सत्यासत्य का निर्णय पति आदि से अनुकूल वर्तमान, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घर के सब कार्यों को जैसा चाहिए वैसा करना कराना वैद्यविद्या से औषधवत् अन्न पान बनाना और बनवाना नहीं कर सकती जिससे घर में रोग कभी न आवें और सब लोग सदा आनन्दित रहें । शिल्पविद्या के जाने बिना घर का बनवाना, वस्त्र आभूषण आदि का बनाना बनवाना, गणितविद्या के बिना सबका हिसाब समझना समझाना, वेदादि शास्त्रविद्या के बिना ईश्वर और धर्म को न जानके अधर्म से कभी नहीं बच सके । इसलिए वे ही धन्यवादी और कृतकृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान माता, पिता, पति, सास, स्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से बर्तें । यही कोष अक्षय है, इसका जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाय । अन्य सब कोष करने का चोर वा दायभागी कोई भी नहीं हो सकता । इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है ।

राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखके विद्वान कराना । जो कोई इस आज्ञा को न मानें तो उसके माता-पिता को दण्ड देना, अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का या लड़की किसी के घर में न रहने पावे किन्तु आचार्यकुल में रहे । जब तक समावर्तन का समय न आवे तब तक विवाह न होने पावे ।

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृत आदि इन सब दानों से वेदविद्या का दान अतिश्रेष्ठ है । इसलिए जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करे । जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान होता है । यह ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा संक्षेप में लिखी गई है ।

—०—